स्वयंप्रभा : प्रकृति और मानव का अनंत संबंध

प्रा. रोहिता केतन राऊत
एस इ.एम ट्रस्ट संचालित
एम बी हैरिस कॉलेज ऑफ आर्ट्स,
नालासोपारा (पश्चिम) मुंबई विश्वविद्यालय।

सारांश

कवि उद्भ्रांत के द्वारा रचा गया इस खंडकाव्य में उस गहरी बेचैनी और व्याकुलता के दर्शन होते हैं जो मनुष्य को महान सृजन के लिए प्रेरित करती है। उद्भ्रांत जी साधक कवि हैं। कबीर जब अंत:साधना की बात करते हैं तो प्रणम्य में हो जाते हैं, फिर उद्भ्रांत की अंतःसाधना को कैसे खारिज किया जा सकता है। कवि का आत्मसंघर्ष 'स्वयंप्रभा' में उभरकर आया। पर्यावरण के अतिरिक्त एक और समस्या इस आधुनिक जीवन की देन है और वह समस्या है - 'समय बीतने के साथ-साथ छीजते जा रहे जीवन मूल्यों की समस्या'। कवि उद्भ्रांत ने जीवन के इस पक्ष को भी अपने इस खंडकाव्य में सफलतापूर्वक उभारा है। यह जीवनदायिनी प्रकृति लाखों वर्षों से मनुष्यों को जीवन का आधार देती चली आ रही है। उसी प्रकृति के प्रति ऐसी निष्ठुरता और संवेदनहीनता कवि की समझ से परे है। वह लिखता है, "हम जिस तेजी से औद्योगीकरण, भूमंडलीकरण, विश्व-बाजार की दमघोंटू प्रतिस्पर्धा, परमाणु आयुधों की अंधी दौड़ तथा अंतहीन अंतरिक्ष युग की ओर बढ़ रहे हैं, वह प्रगति की ओर ले जाने का छलावा दिखाते हुए हमें एक ऐसे भयानक बिंदु की ओर ले जाता प्रतीत होता है, जहां ये सवाल हमारी जीवनदायिनी प्रकृति के लिए - और प्रकारान्तर से हमारे लिए - अस्तित्वग्राही बनकर खड़े हो जाएँगे; यदि हम अभी भी सावधान न हुए तो ! " इसी कारण इस काव्य में शनैः-शनैः छीजते जा रहे जीवन-मूल्यों की ओर भी संकेत किया गया। इसके साथ ही इस खंडकाव्य में आए हुए कई पात्र अपनी मूल्यवत्ता के कारण पाठकों के मन में अमिट छाप छोड़ जाते हैं।

बीज शब्द: प्रकृति, मानव, कविता

कविता के सरोकार मूलतः मनुष्य के सरोकार होते हैं। कवि अपनी रचना में विविध पात्रों का सृजन करता है, एवं उनके माध्यम से मानवीय समस्याओं, जीवन-मूल्यों एवं समय की अभिव्यक्ति करता है। यहाँ यह अर्थहीन हो जाता है। यह समय की सच्चाई है।तकनीकी विकास के इस युग की सबसे बड़ी विडंबना पृथ्वी पर लगातार बढ़ता प्रदूषण है। पृथ्वी पर ही क्यों वायु, जल कुछ भी तो मनुष्य की महत्वाकांक्षा के कारण सुरक्षित नहीं बचा है। विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य इस तरह बेतहाशा भाग रहा है कि जीवनदायी पृथ्वी की दुर्दशा की ओर देखने का उसके पास समय ही नहीं है।

कवि उद्भ्रांत ने इस खंडकाव्य में कण्डु ऋषि की संक्षिप्त कथा के माध्यम से आधुनिक जीवन की इसी विषमता की ओर स्पष्ट रूप से संकेत किया। उद्भ्रांत रचित खण्डकाव्य 'स्वयंप्रभा' की मुख्य पात्र स्वयंप्रभा है, जो मिथकीय आख्यानों एवं इतिहास में प्रायः अज्ञात है, किन्तु स्वयंप्रभा-प्रकरण के बगैर रामकथा अपूर्ण है। स्वयंप्रभा मेरुसावर्णि ऋषि की पुत्री थी, जो ऋक्षबिल नामक गिरि-दुर्ग के निकट अपने पिता के आश्रम में रहती थी। कवि उद्भ्रांत ने भूमिका में अल्प शब्दों में ही स्वयंप्रभा का रामकथा से जुड़ाव, उनके 'सत्यनिष्ठ, अनुशासनप्रिय, साधक - आराधक-वेदवेत्ता योगिनी' व्यक्तित्व तथा उनकी महत्ता का सुन्दर चित्रण किया है- "सीताजी की खोज में निकले हनुमान, जाम्बवंत, अंगद, नल-नील सहित क्षुधा और प्यास से पीड़ित, काल के गाल में समाने को आतुर पराक्रमी वानर - समूह में, उसके आश्रम के फल-फूल खाकर और उसी आश्रम के पवित्र सरोवर में स्नान कर नये जीवन का संचार हुआ"।

कवि उद्भ्रांत के द्वारा रचा गया यह खंडकाव्य परंपरा और आधुनिकता दोनों ही दृष्टियों से अत्यंत समर्थ खंडकाव्य है। इसमें कवि ने एक तरफ जहां स्वयंप्रभा जैसे अबूझ चरित्र को प्रकाश में लाने का शोधपरक और दुष्कर कार्य किया है, वहीं दूसरी तरफ इसकी पृष्ठभूमि को आधुनिक जीवन-जगत से जोड़कर आधुनिक संदर्भों में भी इसे प्रासंगिक बनाने का सराहनीय कार्य किया है। 'स्वयंप्रभा' के इन्हीं संदर्भों को ध्यान में रखते हुए डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं, - "मनुष्य और प्रकृति के रिश्ते क्या हैं, इस पर लम्बे अरसे बाद एक प्रबन्ध कविता लिखी गई है।" –(1)

इस कृति में उस गहरी बेचैनी और व्याकुलता के दर्शन होते हैं जो मनुष्य को महान सृजन के लिए प्रेरित करती है। उद्भ्रांत जी साधक कवि हैं। कबीर जब अंत:साधना की बात करते हैं तो प्रणम्य में हो जाते हैं, फिर उद्भ्रांत की अंतःसाधना को कैसे खारिज किया जा सकता है। कवि का आत्मसंघर्ष 'स्वयंप्रभा' में उभरकर आया। पर्यावरण के अतिरिक्त एक और समस्या इस आधुनिक जीवन की देन है और वह समस्या है - 'समय बीतने के साथ-साथ छीजते जा रहे जीवन मूल्यों की समस्या'। कवि उद्भ्रांत ने जीवन के इस पक्ष को भी अपने इस खंडकाव्य में सफलतापूर्वक उभारा है। यह जीवनदायिनी प्रकृति लाखों वर्षों से मनुष्यों को जीवन का

आधार देती चली आ रही है। उसी प्रकृति के प्रति ऐसी निष्ठुरता और संवेदनहीनता कवि की समझ से परे है। वह लिखता है, "हम जिस तेजी से औद्योगीकरण, भूमंडलीकरण, विश्व-बाजार की दमघोंटू प्रतिस्पर्धा, परमाणु आयुधों की अंधी दौड़ तथा अंतहीन अंतरिक्ष युग की ओर बढ़ रहे हैं, वह प्रगति की ओर ले जाने का छलावा दिखाते हुए हमें एक ऐसे भयानक बिंदु की ओर ले जाता प्रतीत होता है, जहां ये सवाल हमारी जीवनदायिनी प्रकृति के लिए - और प्रकारान्तर से हमारे लिए - अस्तित्वग्राही बनकर खड़े हो जाएँगे; यदि हम अभी भी सावधान न हुए तो ! " इसी कारण इस काव्य में शनैः-शनैः छीजते जा रहे जीवन-मूल्यों की ओर भी संकेत किया गया। इसके साथ ही इस खंडकाव्य में आए हुए कई पात्र अपनी मूल्यवत्ता के कारण पाठकों के मन में अमिट छाप छोड़ जाते हैं।

पर्यावरण की स्वच्छता और इन उद्देश्यों के लिए वनों के संरक्षण की गहन आवश्यकता पर बल देने के लिए भी किया।इस तरह जहां एक तरफ इस खंडकाव्य में उन्होंने 'स्वयंप्रभा' के महत्व स्थापन को स्पष्ट उद्देश्य के रूप में सामने रखा है, वहीं आधुनिक जीवन की तमाम विसंगतियों और विडंबनाओं को भी उन्होंने इस काव्यग्रंथ से जोड़े रखा है, जहां से इसे प्रासंगिकता मिलती है।

दूसरा सर्ग है 'माया'। माया जिसे हम अविद्या, अध्यास, अज्ञान, भ्रम आदि के रूप में जानते हैं। सुख-दुख, अनुकूलता-प्रतिकूलता, लाभ-हानि आदि की अनुभूति ही भ्रम है, अविद्या है। जो लोग स्थिरबुद्धि हैं उन्हें माया कभी त्रस्त नहीं करती । वानर-समूह वनस्पतियों से हीन ऐसे क्षेत्र में पहुँच जाता है, जहाँ सब कुछशुष्क है। दरअसल यह भूमि पूर्वकाल में ऐसी नहीं थी। पहले यह क्षेत्र हरीतिमा से युक्त था। चक्रवाक यहाँ कल्लोल किया करते थे। पक्षियों का मनोहर नाद हुआ करता था। यह क्षेत्र फल-फूलों और जीवनदायिनी जड़ी-बूटियों से संपन्न था। यही पर ऋषि कण्डु का आश्रम था। कण्डु एक सत्यवादी, वेदज्ञ और लोकाचार के प्रज्ञापुरुष थे। उनका एक अत्यंत तेजस्वी और विद्यावसनी दस वर्षीय पुत्र भी था। नव आलोक से दीप्त उस पुत्र को अनेक वैदिक ऋचाएँ कंठस्थ थीं। कण्डु उसे देखकर फूले न समाते थे। अगाध वात्सल्य से उनका तन-मन भर उठता था। उसके सेवाभाव को देखकर सभी आश्रमवासी भी उससे प्रसन्न रहा करते थे।कण्डु का आश्रम सदा मंत्रोच्चार से गुंजायमान रहता था। सर्वत्र आनंद का वातावरण, किंतु समय एक-सा नहीं रहता। कुछ समय बाद वहाँ असुरगण नाना रूप धरकर आतंक फैलाने लगे। वे यज्ञ विध्वंस कर मुनियों को नाना भाँति कष्ट दिया करते थे। इस तरह उस क्षेत्र में आसुरी शक्तियाँ निरंतर बढ़ती जा रही थीं। परिणामस्वरूप लोग वहाँ अनेक आधि-व्याधियों से ग्रस्त रहने लगे। इन स्थितियों को नियंत्रित करने के लिए मुनि पुत्र रात-दिन जुटा हुआ था :

"काल जब होता विषम,
तो मात्र आशीर्वाद फलदायी नहीं होते कभी;
क्योंकि यदि वातावरण
दूषित हुआ तो,
स्वस्थकर जलवायु, औषधि, जड़ी-बूटी
हैं जरूरी संग आशीर्वाद के"- (2)

दुर्भाग्यवशात् कण्डु पुत्र भी आसुरी दुष्टाचरण से रोगग्रस्त होकर काल-कवलित हो गया। इस पर कण्डु बड़े दुखी हुए। कण्डु को लगता था कि उनका पुत्र अत्यंत क्षमतावान था। यदि वह जीवित रहता तो असाधारण कार्य करते हुए हमारी कीर्ति को आगे बढ़ाता। ऋषि के दुख का कोई पारावर न था । क्रोध और पुत्र-शोक से ग्रस्त कण्डु जिस स्थान के प्रति आकर्षित होकर आसुरी शक्तियाँ यहाँ प्रकट हुई थीं उस स्थान को ही उन्होंने शाप दे दिया :-

"नष्ट हो जाए
समूचे क्षेत्र की हरीतिमा,
वृक्ष जाएँ सूख, लुप्त हो जाएँ
धरती बाँझ होवे,
लुप्त हो जाये निमिष में
यहाँ जलचर और वनचर –(3)

कंडू ऋषि के शाप के कारण वन के समस्त पात झर गये। तालाबों का जल शुष्क होने लगा। क्रोध और मोह से तो विनाश ही होता है। ऋषि के शाप ने इस भूमि को पूरी तरह से बंजर बना दिया । नियति परीक्षाएँ भी कर्मयोगी की ही लेती है। सीता जी की खोज में वानर-समूह जंगलों को पार करके ऐसे क्षेत्र में पहुँच जाता है, जो वृक्ष, फल-फूल आदि से हीन था। जो फल थे भी, वे आहार योग्य नहीं थे। पानी का दूर-दूर तक कोई नामो-निशान नहीं था। बस चारों तरफ एक अंतहीन सन्नाटा व्याप्त था। सन्नाटे की भी अपनी भाषा होती है। समस्याओं का भी अंत होता है। धैर्यवान उससे पार पा जाता है। परमशक्ति में दृढ़ विश्वास और कर्म में आस्था रखने वाला किसी भी परिस्थिति में मार्ग पा ही जाता है।

इस खंडकाव्य का तीसरा सर्ग 'मुमुक्षु' है। इस सर्ग में हम देखते हैं कि माता सीता की खोज करते-करते वानर-समूह इसी मरु क्षेत्र में आ पहुँचता है। बेचैन वानर-समूह की स्थिति को गोस्वामी तुलसीदास की इस चौपाई में देखिए, इसी से इस सर्ग की शुरुआत भी होती है।

लागि तृषा अतिसय अकुलाने।
मिलइ न जल घन गहन भुलाने॥
मन हनुमान कीन्ह हनुमाना।
मरनचहत सब बिनु जल जाना॥ -(4)

जल की निर्मलता और शीतल, पवित्र, पावन अमृत धरातल का सुगन्ध देखन लायक है। जहाँ आज अमृत के समान जल के लिए मनुष्य बेचैन है वहीं कविने जल के सौन्दर्य को जीवन के सौन्दर्य से जोड़ा है। जीवन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व कवि 'जल' को मानता है-

"जीवन का
सबसे जरूरी तत्व
यही है सत्व।
ईश्वर की तरह
धरे रूप अनेक।
भावना सा तरल।" - (5)

चुपके-चुपके यह आँख की ओट में नदी की तरह सरल है। छल से रहित है और कभी कल-कल करके छलकता भी है। लाज से लजाती हुई अनुपम सौन्दर्य को समाहित किए हुए अल्हड़ हँसी के फूलों के वृक्ष पर इस तरह से प्रवाहित कर रहा है मानो पिघलने को सदा प्रस्तुत हो। बहुत ज्यादा गर्मी की अवस्था में प्रलय का रूप धारण कर लेगा। उस समय तापमण्डल का रूप विकराल हो जाएगा-

"भरेगा क्रोध में,
जिसका शोधन
करेगा प्रलय से।
जल उठेगा जीवन |
चरम तापमान पर
वाष्प बन
उड़ेगा ऊपर।" -(6)

इस तरह भूमि / धरा पर कुछ भी नहीं बचेगा। उस समय आँख निष्प्रयोजन हो जाएगी। सृष्टि अदृश्य हो जाएगी। जब आँख में पानी ही नहीं रहेगा तो हम सृष्टि को कैसे बचा पाएंगे? 'स्वयंप्रभा' की भूमिका में कवि का कथन है- "पर्यावरण प्रदूषण की समस्या कितनी भयावह हो चुकी है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं; इसका दूरगामी प्रभाव हमारी पृथ्वी की सुरक्षा पर भी पड़ने लगा है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इस विषाक्त वातावरण के कारण ही हमारी पृथ्वी के वायुमण्डल की सुरक्षा वाले अभेध कवच-ओजोन-पर्त- में छिद्र हो गया है जो दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। इसका स्वरूप 'माया' सर्ग में देखने को मिलता है -

"नष्ट करते वृक्ष सारे
फूल-पत्ती नोच देते
आश्रमों मे फेकते मल -मूत्र -(7)

प्रदूषण का यह माहौल सिर्फ एक जगह पर स्थिर नहीं है बल्कि यह क्षिति, जल, पावक, गगन और वायु समस्त पंचतत्व में विद्यमान है। इसका आभास हमें इन पंक्तियों के माध्यम से पता चलता है-

"वायु,
जल,
ध्वनि
और धरती-
सब प्रदूषित। "- (8)

कवि का कहना है- "वायु, जल, ध्वनि के अतिरिक्त, लाखों की संख्या में प्रतिदिन बढ़ते वाहनों और उनके चलने से निकलते धुएँ के कारण भी पर्यावरण प्रदूषित होता है।" - (9)

कहने का भाव यह है कि पौधे, निर्मल सरोवर एक आदर्श जीवन-समाज की आधारभूमि और अधिरचना है। एक सभ्य समाज कभी भी आन्तरिक प्रदूषण को अपने अन्दर समाहित करने की इजाजत नहीं दे सकता है। वर्तमान परिदृश्य में यदि देखा जाए तो संपूर्ण दुनिया के सामने कोरोना संक्रमण एक वैश्विक महामारी की तरह से पाँव फैला चुका है। संकट के इस संक्रमण कालीन समय में कहीं न कहीं प्रकृति के साथ क्रूर व्यवहार का ही नतीजा नजर आता है। लेकिन इतने नकारात्मक समय में भी एक सकारात्मक तत्व उभरकर यह सामने आया है कि संपूर्ण दुनिया का पहिया जब बन्द कर दिया गया। अर्थात् 'लॉकडाउन' लागू किया गया तो वातावरण में धनात्मक परिवर्तन देखने को मिले हैं। दूर-दूर तक आसमान स्वच्छ हो गये हैं। गंगा-यमुना की धारा अमृत के समान पवित्र हो गये हैं। कल-कारखानों के बन्द होने से, वाहनों के आवाजाही कम होने से ध्वनि प्रदूषण और वायु-प्रदूषण कम हो गये हैं। पिछले सौ वर्षों में मानव ने जो वैज्ञानिक तरक्की की थी उसका एक भयावह रूप प्रदूषणगत वातावरण के रूप में उभरकर सामने आया है।

पर्यावरण की स्वच्छता और इन उद्देश्यों के लिए वनों के संरक्षण की गहन आवश्यकता पर बल देने के लिए भी किया।इस तरह जहां एक तरफ इस खंडकाव्य में उन्होंने 'स्वयंप्रभा' के महत्व स्थापन को स्पष्ट उद्देश्य के रूप में सामने रखा है, वहीं आधुनिक जीवन की तमाम विसंगतियों और विडंबनाओं को भी उन्होंने इस काव्यग्रंथ से जोड़े रखा है, जहां से इसे प्रासंगिकता मिलती है।अतः 'स्वयंप्रभा' के आश्रम से सीख लेकर हम वर्तमान पृथ्वी को उजड़ने से बचा सकते है। उसमें एक नयी ऊर्जा का संचार कर सकते है। उम्मीद की किरण में उषा का दीपक जलाकर संपूर्ण संसार को प्रकाशमय कर सकते है।

संदर्भ-

1. स्वयंप्रभा - उद्भ्रांत , अमन प्रकाशन ,कानपुर (भूमिका से) पृष्ठ क्र – 8
2. वही पृष्ठ क्र -37
3 .वही पृष्ठ क्र- 44
4 वही पृष्ठ क्र -47
5 जल - उद्भ्रांत ,यश पब्लिकैशन नवीन शाहदरा ,दिल्ली प्रथम संस्करण पृ. 35
6. वही पृ.क्र-86
7. स्वयंप्रभा, पृ क्र -33/34
8 वही पृ. क्र -86
9. वही (भूमिका से) पृ.क्र –6